पक्षी-परिचय पर आधारित एक विलक्षण औपन्यासिक कृति: तीन खण्डों में

“वनफूल” रचित

डाना

(द्वितीय खण्ड)

हिन्दी अनुवाद

जयदीप शेखर

PREVIEW

डाना

(द्वितीय खण्ड)

पक्षी-परिचय पर आधारित एक विलक्षण औपन्यासिक कृति (3 खण्डों में)

मूल बँगला लेखक

“बनफूल”

हिन्दी अनुवाद

जयदीप शेखर

JAGPRABHA.IN

Bird Photos Credit

Photos of Birds used in the **Annexure-2A** of this book are taken from-

Nature Web: Photos are marked with 'NW'

(contributors: Parag Kokane and Amol Kokane)

Wikimedia: Photos are marked with 'WM'

Tim Laman: Photo of a Bird of Paradise- Western Parotia

(Photograph #186)

Translator pays his heartiest gratitude and thanks towards the Photographers and the webpage admins.

-:eBook:-

Dana (Dwitiya Khand): The Wings (Volume- II)

Hindi translation of a unique Bengali novel based on Bird-Watching published in 3 parts consicutively in the years 1948, 1950 and 1955.

Original Author: "Banaphool" (1899-1979)

(Balai Chand Mukhopadhyay)

Hindi Translator: Jaydeep Das

(Pen Name- Jaydeep Shekhar)

Cover Sketch: Translator

Copyright 2021 © Translator

All rights reserved

Available at: jagprabha.in

***

PREVIEW

JAGPRABHA.IN

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका 5
डाना (द्वितीय खण्ड)..7
अध्याय- 1..7
अध्याय- 2..8
अध्याय- 3..19
अध्याय- 4..32
अध्याय- 5..40
अध्याय- 6..50
अध्याय- 7..56
अध्याय- 8..80
अध्याय- 9..85
अध्याय- 10..95
अध्याय- 11..99
अध्याय- 12..100
अध्याय- 13..110
अध्याय- 14..118
अध्याय- 15..126
अध्याय- 16..129
अध्याय- 17..132
अध्याय- 18..138
अध्याय- 19..148
अध्याय- 20..150
अध्याय- 21..157
परिशिष्ट- 2: उपन्यास में वर्णित चिड़ियों के छायाचित्र 162
परिशिष्ट- 2A: उपन्यास में वर्णित चिड़ियों की सूची...........168

PREVIEW

डाना

(द्वितीय खण्ड)

JAGPRABHA.IN

अध्याय- 1

नदी किनारे स्थित विशाल सेमल के पेड़ पर पत्तियाँ नहीं थीं। अनगिनत लाल फूलों से लद गया था वह पेड़ और इनके आकर्षण से पक्षी-जगत में हलचल मच गया था। जोयारि, महालत, शकरखोरा, देशी मैना, गंगा मैना, तोता, कचबचिया, कौआ, बुलबुल- इन सबों का वहाँ मानो मेला लग गया था। मधुर कलरव से नदीतट गूँज उठा था और आकाश मानो कौतूहलवश झुका आ रहा था। नदी की स्वच्छ शीर्ण धारा को भी आनन्द की छुअन लगी थी, जिससे उसकी स्रोतधारा में लहरों की असंख्य सिहरन पैदा हो रही थी। नदी के उस पार शुभ्र सैकत था। उसके बाद खेत थे- गेहूँ, जौ, चना की फसलों से ढके। पहले-जैसी गहरी हरियाली अब नहीं थी इनमें। हरियाली की बाल-सुलभ उच्छलता के स्थान पर अब चारों तरफ यौवन की स्वर्णाभा दमक रही थी। यह दमक सफल सौन्दर्य की सार्थक महिमा का बखान करते हुए दसों दिशाओं में छिटक रही थी, बरस रही थी।

नवागन्तुक पथिक मुग्ध नेत्रों से देख रहे थे। टूटी-फूटी झोपड़ी के बाहर चौताल पर मेरूदण्ड सीधी रख पद्मासन में बैठे थे वे। देखते-देखते पन्द्रह दिन बीत गये थे। और भी कुछ दिन बीतेंगे शायद। जब तक ये लोग आपत्ति नहीं करते, यहीं रहेंगे वे। यहाँ रहने की कोई बहुत इच्छा हो- ऐसा नहीं था। एक समुचित कारण था जरूर, लेकिन उससे चिपके रहने की प्रवृत्ति नहीं थी उनमें। यहाँ रहेंगे वे, क्योंकि कहीं तो रहना ही है! यह जगह पसन्द आ रही थी उन्हें। नदी का किनारा निर्जन था। पास वाले घर में जो युवती रहती थी, आशंका थी कि उसके चलते कुछ विघ्न पैदा होगा, लेकिन उसकी कोई खास गतिविधि नहीं थी। लगता ही नहीं था कि उस घर में कोई रहता है। सामने वाले बरामदे पर एक कैम्प चेयर पर वह चुपचाप बैठी रहती थी, सामने देखते हुए। कभी कुछ पढ़ती थी। शाम को नदी किनारे टहलते हुए भी दिख जाती थी। बीच-बीच में उनके पास भी आती थी, हाल-चाल लेने। कुछ ऐसे विषयों पर दो-एक प्रश्न करती थी वह, जिन्हें सुनकर लगता था, लड़की अन्धेरे में टटोल रही है। आगन्तुक मन-ही-मन हँसते थे। सोचते थे- सभी टटोलते हैं, कोई जाने में, कोई अनजाने में। ...लड़की अच्छी लगती थी उन्हें। शायद मन में आकर्षण जाग रहा हो। पुणे की मुसलमान सन्न्यासिनी हजरत बाबाजान की याद आ जाती थी

उन्हें। झुर्रियों से भरा चेहरा, सिर पर चाँदी-से सफेद बाल। आँखों की दृष्टि में लेकिन शिशु-सुलभ कौतूहल, मानो पंख फैलाकर उड़ जाना चाहती हो किसी अनजानी दुनिया की ओर। डाना को देख शुरू-शुरू में उनके मन में शंका हुई थी। अब कोई भय नहीं था। जिस अनर्थ की आशंका से महाजनों ने कामिनी-कंचन के त्याग का परामर्श दिया था, उस अनर्थ की सम्भावना उन्हें डाना में नजर नहीं आयी थी स्वयं के प्रति। बेशक उसके तरकश में बहुत सारे मोहिनी वाण थे, पर जब वह उनके पास आती थी, तरकश को छोड़कर ही आती थी। तब उसके चेहरे पर जो हाव-भाव रहता था, उसमें जादूगरनी के इन्द्रजाल का आभासमात्र तक उन्हें कभी नजर नहीं आया था। इसके विपरीत, रास्ता भटक जाने की अनिश्चित व्याकुलता की ही झलक कई बार दिखायी पड़ी थी।

फूलों से लदे सेमल के पेड़ की ओर देखते रहे वे। असंख्य लाल फूल, रंग-बिरंगे अनगिनत पंछी, अनेक प्रकार के कलरव। ...इनमें डाना भी है, वे स्वयं भी हैं। अनन्तमुखी अनन्त लीला के स्रोत में एक साथ बहे जा रहे थे स्वयं भगवान, देह और देहातीत।

यही सोचते हुए बहुत देर बैठे रहे वे।

अध्याय- 2

रूपचँद जब डाना के पास आये, तब सन्ध्या ढल चुकी थी। सूर्यास्त की रक्तिमाभा तब भी पश्चिमी क्षितिज पर टिकी हुई थी, पर कालिमा का आँचल पसरने लगा था। दफ्तर से लौटते वक्त आजकल रूपचँद अक्सर आते थे डाना के पास। बहाने की कोई कमी नहीं थी। यही नहीं, उन्हें लगता था, हर बार किसी बहाने की जरुरत तो नहीं। विभिन्न कारणों से रोज ही आ जाते थे वे। ऐसा हो गया था कि किसी दिन उनका न आना ही डाना के लिए विस्मय की बात होती थी।

उस दिन आते ही रूपचँद ने जो विषय छेड़ा, वह भी नया नहीं था, कई दिनों से इस बात को कह रहे थे वे। डाना अभी तक कुछ तय नहीं कर पायी थी। आने के बाद रूपचँद गले से लिपटी चादर को उतार कर जिस तरह दरवाजे पर टाँगा करते थे, आज भी वैसे ही टाँगने गये।

डाना बोल पड़ी, “अलगनी के रहते वहाँ किसलिए टाँगना? दीजिए मुझे।”

रूपचँद भौंहों को थोड़ा सिकोड़ कर और कन्धों को थोड़ा झुकाकर उस निगाह से डाना को देखते रहे, जिसका अर्थ पहली नजर में यही था कि- तुम लोगी?

पसीने की गन्ध वाली यह चादर तुम्हारे हाथों में देना ठीक रहेगा? इससे ज्यादा गम्भीर एक अर्थ भी था रूपचँद के मन के अन्तराल में, डाना इसे नहीं समझ पा रही थी। वह था- अच्छा? मेरी चादर के सम्बन्ध में ममता जाग उठी है क्या तुम्हारे मन में? इसी की तो प्रत्याशा थी मुझे।

बिना कुछ कहे चादर उन्होंने डाना के हाथों में सौंप दी। इसके बाद चेयर पर बैठकर जेब से सिगरेट-केस निकाल कर एक सिगरेट को हल्के-से सिगरेट-केस पर ठोंकने लगे।

डाना ने ही फिर प्रश्न किया, “दियासलाई है तो?”

“है।”

जेब से दियासलाई निकाल कर सिगरेट सुलगाया। फिर धुएं का एक गुबार छोड़ते हुए वे बोले, “तो क्या तय किया तुमने? मैं आज इन्सपेक्ट्रेस ऑव स्कूल्स से मिला था, वे बोलीं- हो जायेगा। आप दरख्वास्त कर दीजिए।”

स्थानीय बालिका विद्यालय के हेड-मिस्ट्रेस का पद खाली हुआ था। रूपचँद की इच्छा थी कि डाना इस पद के लिए दरख्वास्त दे। डाना का मन नहीं मान रहा था। दूसरी तरफ आर्थिक स्थिति क्रमशः ऐसी हो रही थी कि जल्दी ही अर्थोपार्जन की कोई व्यवस्था करना जरूरी था। यह व्यवस्था कैसे होगी- इसका कोई अन्दाजा नहीं था उसे। इस लिहाज से उसे रूपचँदबाबू के प्रस्ताव पर तुरन्त राजी हो जाना चाहिए था, लेकिन किसी भी तरह से वह खुद को राजी नहीं कर पा रही थी। उसने विद्यार्जन किया था सुसंस्कृत होने के लिए, नौकरी करने के लिए नहीं। उसे कभी नौकरी करनी पड़ सकती है- इस बात की उसने कभी कल्पना ही नहीं की थी।

रूपचँद ने अकस्मात् प्रश्न किया, “किराने की दूकान से चावल, दाल, तेल, घी सब दे गया है न?”

“हाँ, दे गया है?”

“आनन्द तुम्हें जो नौकर दे गया है, वह काम ठीक करता है? नहीं तो बताओ, मेरी नजर में एक नौकर है, वह खाना भी पका सकता है।”

“नहीं, ठीक काम करता है।”

“तनख्वाह कितनी तय हुई है?”

“मैंने कुछ तय नहीं किया है। आनन्दबाबू ने कुछ कहा नहीं है मुझसे।”

“पहले तय कर लेना ठीक रहता है। बाद में कोई झमेला न हो। इस बीच आनन्द आया था क्या?”

"कल आये थे।"

"ओ- ।"

रूपचँद चुप रह गये। डाना भी चुप रही। दोनों के बीच मानो एक अदृश्य रहस्य घनीभूत हो आया हो।

सिगरेट का एक कश खींचकर रूपचँद एकाएक बोल पड़े, "दो-चार दिनों में जन-मजूर आ जायेंगे। कल ही आते, लेकिन उन चोट्टों का भाव बढ़ गया है। कॉन्सटेबल भेजकर उन्हें लाईन पर लाना पड़ा। आयेंगे तो जरूर।"

"जन-मजूर किसलिए?"

"वर्षा आने वाली है। मकान की हालत जर्जर है। मरम्मत न हो, तो रहना मुश्किल हो जायेगा।"

"लेकिन मरम्मत में तो बहुत खर्च आयेगा- "

"सो तो है। बाँस, रस्सी, खपरैल सब महँगे हो गये हैं। होने दीजिये खर्च, देंगे गौरी सेन। अमरेश के पास पैसों की कमी नहीं है।"

रूपचँद के चेहरे पर हँसी खिल उठी।

"उनका मकान है, वे ही मरम्मत करवायेंगे। मैं सिर्फ व्यवस्था किये दे रहा हूँ। मतलब- झंझट अपने सिर ले रहा हूँ।" अन्तिम बात कहकर रूपचँद ने डाना की ओर इस तरह से देखा, मानो कह रहे हों- तुम्हारे ही लिए।

डाना शर्मा गयी। सिर्फ शर्मायी नहीं, शंकित भी हुई। उसे महसूस हुआ, चारों तरफ से एक जाल क्रमशः उसके नजदीक आ रहा है। एकमात्र रास्ता बचा था- स्कूल की नौकरी स्वीकार कर लेना। दूसरों की मेहरबानियों पर कब तक रहेगी वह? इन मेहरबानियों के बदले में किस चीज की आशा रख रहे हैं ये?

"अच्छा, स्कूल की हेड-मिस्ट्रेस के लिए क्वार्टर है?"

"नहीं। जब तक क्वार्टर नहीं बनता, तब तक वे लोग महीने में पचीस रुपये किराया देंगे। इसी मकान को ले सकती हो। इसी में सुविधा है, क्योंकि अमरेश को जो किराया मैं बता दूँगा, वे उसी पर राजी हो जायेंगे। शहर के अन्दर पचीस रुपये में इतना बड़ा मकान नहीं मिलेगा। खाली मकान हैं ही नहीं। तुम्हारे लिए खोजा तो था बहुत।"

इस बात पर डाना फिर मन-ही-मन संकुचित हो गयी। सहसा एक और बात पर ध्यान गया उसका। कितनी आसानी से रूपचँदबाबू 'आप' से 'तुम' पर आ गये थे। हालाँकि इसमें अनुचित या अस्वाभाविक कुछ नहीं था, हमारे देश में ज्येष्ठ लोग अपने से कनिष्ठ को साधारणतया तुम कहकर ही सम्बोधित करते

हैं; फिर भी, जिस दिन पहली बार सुना था उसने, उस दिन कैसा एक खटका लगा था। अमरेशबाबू और आनन्दबाबू भी तो आते हैं यहाँ, वे तो कभी 'तुम' नहीं कहते! जाने क्यों उसने तय किया, अब से उन्हें भी वह 'आप' नहीं कहने देगी। वह उनसे अनुरोध करेगी 'तुम' से सम्बोधित करने के लिए। सिर्फ रूपचँदबाबू ही क्यों घनिष्ठ आत्मीयता का दावा करें? फिर एकाएक उसे लगा- नहीं, रूपचँदबाबू दावा कर सकते हैं। इस अनजाने स्थान पर रूपचँदबाबू न मिलते, तो क्या होता उसका? उन्होंने ही तो उसे आश्रय दिलवाया और आज भी प्रतिदिन वे उसकी सुख-सुविधा के लिए चेष्टा किये जा रहे हैं। इसके बावजूद उनके व्यवहार में ऐसा कुछ उसे अब तक नजर नहीं आया था, जो सन्देहजनक हो। ...वह दूसरी तरफ देखते हुए सोच रही थी, गर्दन घुमाकर देखा, रूपचँदबाबू अपलक उसकी ओर देखे जा रहे थे। दृष्टि में जो भाव था, वह आतंकजनक नहीं था, तो आश्वासजनक भी नहीं था।

कुछ पल अपलक डाना को निहारने के बाद रूपचँद बोले, "तुम आज ही दरख्वास्त लिख लेना, क्योंकि परसों दरख्वास्त देने का अन्तिम दिन है।"

"सोच रही हूँ- "

रूपचँद मन-ही-मन उत्कण्ठित थे डाना का मनोभाव जानने के लिए, लेकिन इतना ही कहकर डाना रूक गयी। अचानक उसे मानो पता चला कि अपने अन्तर्मन की निगूढ़ बात को वह स्वयं ही ठीक से नहीं समझ पायी है।

"क्या सोच रही हो?"

"सोच रही हूँ कि इस अपरिचित जगह से खुद को इस तरह जोड़ना क्या ठीक रहेगा?"

"अपरिचित जगह को परिचित होने में कितने दिन लगते हैं भला?"

"मुझे ज्यादा समय लग जाता है।"

"रंगून के अलावे कोई और परिचित जगह है क्या तुम्हारा?"

"सो तो नहीं है।"

"फिर?"

ऐसे 'फिर' का उत्तर दे पाना कठिन था, सहसा कुछ कहा नहीं जा सकता था। डाना चुप हो गयी। इसके बाद अचानक उसका चेहरा तमतमा कर लाल हो गया। कोई एक दुःसह वेदना मानो फूटकर बाहर आ गयी। वह अचानक से बोली, "इतना तय है कि यहाँ से जाते वक्त मैं सबका ऋण चुकाकर जाऊँगी। मेरे पास अभी भी दो-एक गहने हैं- "

रूपचँद के चेहरे का तीक्ष्ण भाव एक स्निग्ध हास्य के साथ कोमलता में परिवर्तित हो गया। प्रवासी विदुषी इस तरूणी के अन्दर एक स्वाभाविक नारी को देख कुछ आश्वस्त हुए वे। मानो हाथ रखने या पकड़ने के लिए कुछ एक मिल गया हो। अभी तक अन्धेरे में ही हाथ-पाँव मार रहे थे वे। अभी तक औपचारिकता एवं शिष्टाचार का मुखौटा उन्हें विभ्रान्त कर रहा था, रोक रहा था। आज उसके कण्ठस्वर में अभिमान की ध्वनि पाकर वे आनन्दित हुए।

हँसकर बोले, "सस्ती कविता रचने का एक बढ़िया अवसर दे दिया तुमने। अभी तुमने जो कहा, उसके उत्तर में अनायास ही कह सकता था- गहने बेचकर सब ऋण नहीं चुकाये जा सकते, ऐसा कहना गलत भी नहीं होता; लेकिन मैं वो सब नहीं कहूँगा। बल्कि मैं तो कहूँगा- हाँ, बेशक सबका ऋण चुकाना ही होगा। ऐसा न करने से आत्मसम्मान नहीं रह जायेगा; और तुम्हारी-जैसी लड़की के आत्मसम्मान को चोट पहुँच रही हो- इससे अधिक शोचनीय दृश्य की तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। बिना गहने बेचे भी ऋण चुक जाय, इसी के लिए मैं शुरू से प्रयासरत हूँ। और एक बात तुम्हारी-जैसी लड़कियों को पता होना चाहिए कि गहने बेचकर ऋण चुकाना भी आत्मसम्मान के लिए हानिकारक होता है। उपहार की एक मर्यादा होती है, इसका अपमान करना क्या अच्छी बात है?"

एकबार में इतनी लम्बी बात अब तक उन्होंने डाना से नहीं कही थी। खुद उन्हें ही अपनी बातों का अति-नाटकीय ढंग अटपटा लगा। महसूस हुआ, बाल की खाल उन्होंने कुछ ज्यादा ही निकाल दी है। अपनी इस नाटकीय बात पर वे थोड़ा झिझके, लेकिन अगले ही पल खुद को ऐसा संयत किया उन्होंने कि चेहरे का हाव-भाव ही बदल गया। भौंहें सिकोड़ कर उन्होंने सिगरेट का एक और कश लगाया और नाक-मुँह से धुएँ का जो गुबार छोड़ा, उसे देख डाना को अचानक लगा- यह सिगरेट का नहीं, ज्वालामुखी का धुआँ है।

कुछ पलों की नीरवता के बाद डाना बोली, "आत्मसम्मान की बात जब निकल ही गयी है, तब एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए।"

रूपचँद कुछ पल डाना के चेहरे को देखते रहे, फिर बोले, "कौन-सी?"

"किसी को ठगना क्या आत्मसम्मानजनक है?"

"क्या मतलब?"

"मैं जो चीज नहीं जानती, उसे जानने का भान करते हुए वेतन लेना क्या ठगना नहीं हुआ? इससे पहले मैंने कभी मास्टरी नहीं है। मेरा मानना है कि इस

विषय में मेरी कोई योग्यता भी नहीं है। एक डिग्री होने से ही योग्यता नहीं आ जाती- ”

“सच कहा जाय, तो तुममें जो योग्यता है- मेरे हिसाब से- उसके अनुरूप चलने की अनुमति तुम्हारा विवेक नहीं देगा- ” कहकर रूपचँद थोड़ा रूके, फिर तीक्ष्ण दृष्टि डाना के चेहरे पर डालते हुए बोले, “ -वह क्या है, यह बताने की अनुमति मेरा विवेक नहीं दे रहा। हमारे समाज और राष्ट्र की व्यवस्था इतनी विचित्र है और हम पर जरुरतों का दवाब इतना प्रबल है कि योग्यता के अनुसार काम पाने का सुयोग हमें प्रायः नहीं ही मिलता। जीवन में सबको अपने-आप को बचाते हुए समझौतों के साथ जीना पड़ता है। एक समय में मैं विश्वविद्यालय का मेधावी छात्र था, केमिस्ट्री में मेरी गहरी रुचि और अद्भुत योग्यता थी, लेकिन अपनी जिन्दगी बिता रहा हूँ मैं पुलिस साहेब की किरानीगिरी करते हुए। किरानी बनने की योग्यता नहीं थी मुझमें- ” फिर एकाएक रूके गये रूपचँद। लगा, हृदय की सस्ती संवेदना के आवेग में धारा से भटक रहे हैं वे। इसके अलावे, एक और विचित्र अनुभूति ने उन्हें चकित कर दिया। महसूस हुआ, इस विषय पर ज्यादा बोलने से उनकी आँखों से अश्रुधारा बह जायेगी। किसी निगूढ़ वेदना के उद्गम को एक कठोर चट्टान से दबाकर रखा गया था, वह चट्टान मानो हिल गयी हो। उनकी आशा-आकांक्षा-योग्यता की श्मशानभूमि पर से हिमशीतल हवा का एक झोंका मानो हाहाकार करते हुए गुजर गया उनके हृदय के अन्तःस्थल में। मन के इस अद्भुत आचरण से विस्मित हो गये वे। क्रोध भी आया। इस तरह विचलित होने का क्या मतलब? सिगरेट की ओर देखकर एक-दो कश लगाया उन्होंने, फिर फेंक दिया उसे।

डाना ने हँसकर कहा, “आपने जो कहा, वह ठीक ही है, लेकिन एक अयोग्य किरानी देश का उतना अनिष्ट नहीं करेगा, जितना कि एक अयोग्य मास्टर या डॉक्टर। इनके हाथों में देश की जनता को सम्भालने की जिम्मेवारी होती है। इतनी बड़ी जिम्मेवारी उठाने का साहस मुझमें नहीं है।”

“तो क्या तय कर रही हो?”

“मैं सोचती हूँ, चली जाऊँगी यहाँ से। कोलकाता या बॉम्बे- ”

रूपचँद का चेहरा उतर गया।

“इससे क्या लाभ होगा?”

“वहाँ अपनी योग्यता के अनुसार कोई काम तलाश लूँगी। मान लीजिये, टेलीफोन में काम मिल सकता है; किरानीगिरी भी कर सकती हूँ कहीं। शॉर्ट-हैण्ड

और टायपिंग जानती हूँ मैं। इनके अलावे, गीत-संगीत भी सीखा था कायदे से- वह भी सिखा सकती हूँ। बड़े-बड़े शहरों में बहुत तरह के काम मिल सकते हैं। इन जगहों में मास्टरी के अलावे कोई और चारा नहीं है।"

"सो तो है।"

वाजिब बातों का प्रतिवाद करना रूपचँद के स्वभाव में नहीं था, लेकिन उनके चेहरे पर आशंका की छाया के साथ कटु विद्रुप का एक ऐसा सम्मिलीत भाव उद्भासित हुआ कि वह प्रतिवाद के मुकाबले कहीं ज्यादा तीक्ष्ण था। कुछ देर चुप रहने के बाद वे बोले, "यदि तुम मेरी अपनी कोई होती, तो तुम्हें इसका एक और पहलू दिखाने की कोशिश करता, लेकिन वह अधिकार मुझे नहीं है।"

जल्दीबाजी में डाना बोल उठी, "नहीं-नहीं, ऐसा क्यों कहते हैं? इस वक्त दुनिया में आप ही लोग मेरे आत्मीय हैं। आपलोगों का सहारा न मिलता, तो पता नहीं मेरा क्या होता। आप लोगों के मत के विरुद्ध जाकर मैं कुछ नहीं करने जा रही। मैं सोच रही थी कि कोलकाता जाने से कोई और काम शायद कर सकती थी। मास्टरी मुझसे नहीं हो पायेगी।"

रूपचँद कन्धा झुकाये अर्द्धनिमीलित आँखों से अपलक डाना की ओर देख रहे थे। लगा, डाना की बातों को उपभोग कर रहे हैं, या फिर गम्भीरता से सुन रहे हैं। बातें सुनकर कुछ देर के लिए नीरव हो गये वे। फिर धीरे-धीरे बोले, "अगर तुम सचमुच मुझे अपना आत्मीय मानती हो, तो जो कह रहा हूँ, सुनो। तुम्हें अपनी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं करना है। तुम जैसे हो, वैसे ही रहो।"

"इसी तरह रहा जा सकता है क्या?"

"तो कैसे रहना चाहती हो, बताओ। वैसी ही व्यवस्था कर दूँगा।"

"व्यवस्था तो आप कर ही रहे हैं, लेकिन मुझे बेचैनी हो रही है।"

रूपचँद की भौंहें अचानक सिकुड़ गयीं। चेहरे पर तिरछी हँसी के साथ वे बोले, "तुम्हारे अन्दर यह बेचैनी क्यों है, जानती हो?"

"क्यों, बताईए?"

"तुम सही मायने में मुझे अपना आत्मीय नहीं समझ पा रही हो। समझती, तो यह बेचैनी नहीं होती। तुम मुझे अपना आत्मीय कह तो रही हो, लेकिन तुम्हारे व्यवहार में यह नजर नहीं आ रहा है। मैं तुम्हारी मामूली मदद कर रहा हूँ और तुम ऋण चुकाने के लिए परेशान होने लगी- जबकि तुम्हें खुद समझ में नहीं आ रहा है कि यह करोगी कैसे?"

सहज हँसी हँसते हुए डाना ने जवाब दिया, “सही कह रहे हैं आप। मैं आपलोगों को आत्मीय मानने की कोशिश तो कर रही हूँ, लेकिन व्यवहार में इसे ठीक से जता नहीं पा रही हूँ। कहीं कुछ रोक रहा है मुझे।”

“क्यों?”

फिर कुछ हँसकर डाना ने जवाब दिया, “पता नहीं!”

रूपचँद भी मुस्कुराते हुए डाना को देखते रहे। फिर बोले, “बहुत ज्यादा सोच-विचार करने से ऐसा ही होता है। जब ऋण चुकाना हो, तब चुकाना। उसे लेकर अभी हैरान-परेशान होने की जरुरत नहीं। प्रतीक्षा करने लायक धैर्य है मुझमें... ”

धैर्य के साथ कोई ऋण-शोध की प्रतीक्षा कर रहा है- यह दृश्य तो और भी परेशान करने वाला लगा डाना को, लेकिन वह चुप रही।

“दरख्वास्त नहीं करना है- यही तय रहा तो?”

“हाँ। वो सब अभी रहने दिया जाय।”

“ठीक है, चादर ला दो, चलूँ अब।”

“अभी जाईएगा? चाय बनाने के लिए कहा है।”

“फिर तो चाय पीकर ही चलूँगा।”

चाय पीने के प्रस्ताव में मानो रूपचँद को कोई नयी रोशनी दिखी। रोज ही वे चाय पीकर जाते थे, लेकिन आज उन्हें इसमें एक नयापन नजर आया। भौंहों को थोड़ा सिकोड़ा उन्होंने। फिर सहसा उत्साहित होकर बोले, “देखो, एक बात तुम याद रखना। मैंने जब तुम्हारी जिम्मेवारी ले ली है, तो कोई डर नहीं है। हाँ, तुम यदि नौकरी कर लेती, तो मेरे लिए आसानी होती। रुपये-पैसे की ओर से नहीं, लोकाचार की ओर से। एक अपरिचिता विदेशिनी के यहाँ रहने का एक वाजिब कारण मिल जाता उन्हें, बेशक इससे भी उनका मुँह कोई बन्द नहीं हो जाता, लेकिन मेरी ओर से देने के लिए एक जवाब रहता।”

अप्रत्याशित भाव से ही डाना बोल उठी, “कौन क्या कहेगा, इसकी चिन्ता मुझे नहीं है। मेरी चिन्ता- ”

डाना मुस्कुरा कर रूक गयी। रूपचँद ने प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा उसकी ओर। फिर भी वह चुप रही। रूपचँद भी कहाँ छोड़ने वाले थे।

“मैं भी तो जानूँ कि तुम्हारी चिन्ता किस बात को लेकर है, बशर्ते कि बताने में आपत्ति न हो।”

“मेरी चिन्ता खुद को लेकर है। अपने सामने अगर मेरा आचरण निर्दोष हो, दूसरों की बातों की मैं परवाह नहीं करती।”

"अच्छा।"

और कोई बात होती, इससे पहले ही नौकर चाय ले आया। टेबल पर सरंजाम रखकर वह चाय छानने लगा। नीरवता के साथ बड़ी गहनता से रूपचँद नौकर का निरीक्षण करने लगे। उसका चेहरा, उसकी चाल-ढाल, भाव-भंगिमा, पहनावा, चाय छानने का कौशल- प्रत्येक बात पर वे ध्यान दे रहे थे। यह उनका स्वभाव था। बिना कोई प्रश्न किये केवलमात्र प्रेक्षण के बल पर वे किसी व्यक्ति की चाल-चरित्र के सम्बन्ध में धारणा बनाते थे और जब वे यह करते थे, तब किसी को पता भी नहीं चलता था कि वे एक ऐसे कठिन काम में रत हैं।

चाय-पर्व नीरवता में ही सम्पन्न हुआ।

चाय खत्म करते ही रूपचँद उठ खड़े हुए।

"चादर दे दो, अब चलता हूँ- "

डाना चादर लाने बगल के कमरे में गयी। जेब से एक लिफाफ निकाल कर रूपचँद उसे भौंहें सिकोड़ कर देखने लगे।

डाना के आते ही बोले, "एक बात पूछे बिना नहीं रहा जा रहा। साफ-साफ पूछ लेना ही शायद ठीक रहेगा।"

"कौन-सी बात?"

"मैं जो यहाँ आता हूँ, तुम्हारी मदद करने की कोशिश करता हूँ, इस पर दूसरे क्या कहते हैं- उसकी मुझे परवाह नहीं है, लेकिन तुम्हारे मन में मेरे बारे में कोई सन्देह तो उत्पन्न नहीं होता?"

भौंहें सिकोड़े तीक्ष्ण दृष्टि के साथ डाना के चेहरे की ओर वे देख रहे थे। बिलकुल सत्य बात को सपाट तरीके से डाना नहीं बोल पायी।

थोड़ा हँसकर बोली, "अभी तक तो ऐसा कोई कारण सामने नहीं आया है।"

पल भर चुप रहकर बात को समझा रूपचँद ने। इसके बाद बोले, "जब तक ऐसा कोई कारण सामने नहीं आता है, तब तक मुझे एक हितैषी आत्मीय मान लेने में तुम्हें कोई आपत्ति नहीं होगी- क्यों?"

"इतनी भूमिका किसलिए बताईए तो- "

"ऐसा है, तो इसे मैं निस्संकोच तुम्हें दे सकता था।"

लिफाफ दिखाया उन्होंने।

"क्या है यह?"

"मेरे जाने के बाद खोलकर देखना।"

लिफाफ की ओर देखते हुए डाना कुछ देर ऊहा-पोह में रही। फिर उसने तय कर लिया।

“अच्छा दीजिए।”

लिफाफ देते ही रूपचँद चले गये।

डाना ने खोलकर देखा, सौ रुपये का एक नोट था और साथ में थी एक छोटी चिट्ठी। अँग्रेजी में टाईप की हुई। चिट्ठी का मजमून थाः अतिशय संकोच के साथ रुपये तुम्हें दे रहा हूँ। मित्र के नाते इसे स्वीकार करने में अगर तुम्हारा विवेक आपत्ति करे, तो ऋण-स्वरूप ही ले लेना। जब सुविधा हो, चुका देना। कहने की आवश्यकता नहीं, मेरी ओर से कभी कोई तकादा नहीं रहेगा। -नीचे कोई नाम नहीं था।

नोट हाथ में लिये डाना कुछ देर चुपचाप खड़ी रही। रूपचँदबाबू पर गुस्सा नहीं आया। संकोच भी कुछ खास नहीं हुआ। फिर भी, अनजाने में ही उसका चेहरा थोड़ा विवर्ण हो गया। जिस निष्ठुर नियति ने उसके जीवन को सुख के शिखर से उतार फेंका था, उसी की काली छाया कुछ देर के लिए उसके चेहरे पर तैर गयी। एक दृश्य की याद आयी उसे। जब वे लोग बर्मा से पलायन कर रहे थे, तब रास्ते में एक समाजसेवी संस्था ने उन सबके लिए भोजन की व्यवस्था की थी। हजारों-हजार लोग भाग रहे थे, भागकर आ रहे थे अपना सर्वस्व छोड़कर। धनी और भिक्षुक में अन्तर नहीं था। भयभीत, पीड़ीत, भग्नहृदय, बुभुक्षु जनता का वह जुलूस उसके मानसपटल पर तैर गया। संस्था ने एक नदी के किनारे सबके लिए भोजन की व्यवस्था की थी। सम्भवतः पानी की सुविधा के लिए ही। आयोजन विशेष कुछ नहीं था। मोटे दाल-चावल की खिचड़ी और मिली-जुली सब्जी पंक्तिबद्ध बैठे लोगों के सामने पत्तलों पर परोसी जा रही थी। जाति-धर्म भूलकर आबालवृद्धवनिताओं के दल बार-बार आग्रह के साथ वही माँगकर खा रहे थे। अचानक देखा गया, एक व्यक्ति खा नहीं रहा था। खिचड़ी की ओर देखते हुए चुपचाप बैठा हुआ था। आँखों की दृष्टि में लोभ झलक रहा था, लेकिन खा नहीं रहा था। हाथों को समेट कर चुपचाप बैठा हुआ था। चेहरे पर कुछ दिनों की दाढ़ी-मूँछें उगी हुई थीं। देह पर सिल्क का कुरता था, जो गन्दा हो रहा था। हाथ की एक उँगली पर चमकती हीरे की अँगूठी बेमेल मालूम पड़ रही थी। आयोजकों में से एक ने आकर पूछा, “आप खा क्यों नहीं रहे?” आदमी विस्मय के साथ प्रश्नकर्ता के चेहरे की ओर देखता रहा कुछ देर। फिर आस-पास की परिस्थिति के प्रति सजग होकर चौंककर बोल उठा, “हाँ खाऊँगा,

लेकिन क्या आप लोग मेरी एक बात मानेंगे?” कार्यकर्ता ने कहा, “कौन-सी बात, कहिए?” थोड़ा हिचकिचा कर वह व्यक्ति बोला, “मेरा पत्तल अलग जगह पर लगा दीजिए।” कार्यकर्ता भला व्यक्ति था, उसने अलग स्थान पर खाने की व्यवस्था कर दी। डाना बगल में ही बैठी थी, सब सुन रही थी। वह व्यक्ति पंक्ति से अलग हटकर बैठने के बाद कुछ देर आँखें फाड़े देखता रहा, फिर किसी बेवकूफ की तरह ठठाकर हँसते हुए कार्यकर्ता से बोला, “आपको कष्ट दिया, बुरा मत मानिएगा। बात यह है कि अभी कुछ दिनों पहले तक मैं करोड़पति था। अपने घर में ही मैं प्रतिदिन ढाई सौ लोगों के लिए कंगाली भोज कराता था। अभी मेरा सब कुछ खत्म हो गया है; फिर भी, उनके साथ पंक्ति में बैठकर मैं नहीं खा पा रहा हूँ।” कहकर कुछ देर देखता रहा वह, फिर गपागप खाने लगा। डाना को लगा, ये सज्जन सब कुछ छोड़ आये हैं बर्मा में, लेकिन एक चीज छोड़कर नहीं आ पाये- अहंकार। बहुत दिनों बाद आज वह घटना याद आयी। मन में सोचा, रूपचँदबाबू के रुपये लौटाकर वह अशोभनीय स्वार्थपरता नहीं जतायेगी।

अचानक एक दूसरी बात याद आयी डाना को। सुबह आनन्दबाबू आये थे। नदी के उस पार का आकाश मनोहर छटा बिखेर रहा था। आकाश के पट पर मानो किसी ने विशाल सफेद मेघ का एक जाल टाँग रखा था। आनन्दबाबू प्रसन्न हो गये थे। उनके शब्द अब भी उसके कानों में गूँज रहे थे-

“आप और मैं, दोनों लेकिन ठीक एक ही तरह से नहीं देख रहे हैं। धरती पर कोई भी दो व्यक्ति कभी एक नजरिये से नहीं देखते, भले वे एक ही चीज को देख रहे हों।”

इसके बाद काफी देर तक वे आकाश की ओर एकटक देखते रहे थे। लग रहा था, नीले आकाश के असीम में उनकी दृष्टि खो गयी हो।

अचानक बोले, “कागज है?”

“लेटर-पैड है एक।”

“दीजिएगा? एक कविता लिखता- ”

उसके पैड के एक पृष्ठ पर एक कविता लिखकर गये थे वे।

डाना ने टेबल के पास जाकर एक बार फिर उस कविता को पढ़ा-

आकाश केवल बाहर ही नहीं है सखी
अन्तर में भी एक आकाश छुपा रखा है तुमने
उस आकाश के आँगन में तारों की झिलमिल को

गहन रात्रि में जागकर कभी देखा है तुमने?

(कुल 28 पंक्तियों की कविता)

डाना को सहसा महसूस हुआ, आनन्दबाबू की कविता और रूपचँदबाबू का सौ रुपये का नोट- दोनों एक ही चीज के दो रूप हैं, रसायनशास्त्र में जिसे ऐलोट्रॉपिक मॉडिफिकेशन कहते हैं। कुछ देर वह निश्चल खड़ी रही। मन के अन्धकार में मानो प्रेत के समान कोई खड़ा था।

अध्याय- 3

वैज्ञानिक अपने घर के पीछे अतिशय उत्तेजना के साथ घूमते फिर रहे थे। नीम के पेड़ की ऊँची डाली पर बैठकर दहियर बार-बार पुकार रहा था। यह दहियर उन्हीं का था, अर्थात् बीते साल जिन पाँच दहियरों के पैर में उन्होंने रिंग पहनाये थे, उन्हीं में से एक था यह; बाकी चार नहीं दिखे थे अभी तक। यह भी अब तक नहीं दिखा था, आज अचानक नजर आया। वैज्ञानिक ने नोटबुक निकाल कर जल्दी से तारीख लिख लिया। पहली बार दहियर किस स्थान पर दिखा, यह भी लिखा। फिर वही सन्देह मन में जन्मा। सारी शीत ऋतु में ये चिड़ियाँ इतनी कम दिखायी पड़ती हैं कि कभी-कभी सन्देह होता है कि ये शायद इस देश में रहती ही नहीं हैं। शीत कुछ घटने के बाद ही ये आती हैं। सिन्धु, कराची इत्यादि स्थानों से अप्रैल महीने की शुरुआत में दहियर चिड़ियाँ चली आती हैं- ऐसा जिक्र लाहा महोदय ने कर रखा है। क्या पता, शीतकाल में ये चिड़ियाँ उन्हीं अँचलों में चली जाती हों! शीतकाल में उन इलाकों में कितना तापमान रहता है- यह पता लगाना होगा। दहियर उड़कर टेलीग्राफ के खम्भे पर जाकर बैठ गया। उसकी चहक का सुर भी बदल गया। सुर में धमकाने का आभास था। कारण जानने के लिए वैज्ञानिक ने आस-पास नजर दौड़ायी, जरूर कोई और आया होगा। कुछ भी नहीं दिखा। दुम खड़ा कर ज्योंहि दहियर ने हमला किया, दूसरा दहियर दिख गया। वैज्ञानिक को यही आशा थी। हमला होने पर दूसरा दहियर अपराधी की तरह भाग गया, लेकिन थोड़ी दूर जाकर ही रूक गया। इसका अर्थ समझते वैज्ञानिक को देर नहीं लगी। इस बारे में किताब में पढ़ा था उन्होंने। प्रत्येक चिड़िया का अपना-अपना एक इलाका होता है। अपने इलाके में कोई किसी को घुसने नहीं देता। दो इलाकों के बीच में थोड़ा-सा इलाका 'एजमाली' होता है, वहाँ सभी इलाकों के पक्षी जा सकते हैं। दूसरे दहियर ने पहले दहियर के इलाके में घुसकर जो गैर-कानूनी काम किया था, इससे वह

वाकिफ था, इसलिए भगाये जाते ही अपराधी भाव के साथ वह भाग खड़ा हुआ। एजमाली इलाके में आने के बाद वह फटकार सुनने को राजी नहीं था। अब वह पंखों को फुलाकर अकड़ कर बैठ गया। पहला दहियर हमला करते हुए उसके पास गया, तो दूसरा फुदक कर खिसका और तारस्वर में चीख-पुकार करने लगा। अमरबाबू को महसूस हुआ, यह न गाना है, न हाहाकार, बल्कि यह धमकी-जैसा कुछ है। कन्धों के रोओं को फुला लिया था उसने, दुम को बार-बार ऊपर-नीचे कर रहा था, लग रहा था- युद्धं देहि, युद्धं देहि बोल रहा हो; लेकिन साथ ही, पीछे हटने का भाव भी दिखा रहा था। अन्ततः भागना ही पड़ा बेचारे को। पहले दहियर के झपट्टों से उसके लिए टिक पाना असम्भव हो गया। उड़कर भाग गया वह मौलसरी के पेड़ के बगल से। पहले दहियर ने पश्चाद्धावन नहीं किया, लौट आया नीम की उसी ऊँची डाली पर। यह उसका अपना नीम था, इसकी चौहद्दी में वह किसी दूसरे दहियर को नहीं आने देगा। वैज्ञानिक ने अपनी नोटबुक में इस दहियर के इलाके नक्शा बना लिया एक। मौलसरी और आम के पेड़ के बीच का इलाका सम्भवतः एजमाली इलाका था। पूर्व में नीम का पेड़, पश्चिम में मल्लिक के बाग की चहारदीवारी, उत्तर में मालियों के घर और दक्षिण में अस्तबल। प्रायः दस बीघे का इलाका होगा। लगता था, दहियर का यही स्वराज्य था।

...एक झुण्ड तोता आकर मौलसरी के पेड़ पर बैठ गया। आम के पेड़ की सबसे ऊँची डाली पर एक नर शकरखोरा आकर बैठा। गाढ़े काले रंग के ऊपर नीले की आभा छिटक रही थी। डैनों के पास एक टुकड़ा लाल आग के समान चमक रहा था। चोंच ऊपर उठाये वह 'ची-ह्निट, ची-ह्निट, ची-ह्निट-' करके पुकारने लगा। पतेना चिड़ियों का एक दल पंक्ति बनाकर उड़ रहा था। 'पीऊ-कहाँ, पीऊ-कहाँ, पीऊ-कहाँ-' दूर कहीं से पपीहे की अनवरत पुकार तैरते हुए आ रही थी।

...कुछ पलों के लिए वैज्ञानिक मंत्रमुग्ध हो गये। उन्हें लगा, वे किसी अलौकिक स्वप्नलोक में आ पहुँचे हैं, जहाँ सुर और रंग के अलावे सम्प्रेषण की और कोई भाषा नहीं है। वे भूल ही गये कि दहियर चिड़ियों से सम्बन्धित बहुत सारे छोटे-मोटे तथ्यों का संग्रह करना है उन्हें- अन्यमनस्क होने से काम नहीं चलेगा; लेकिन मन को जोर-जबर्दस्ती से एकाग्र करना क्या सम्भव है? एक ही मन सहस्र दिशाओं में सहस्र डैने फैलाकर उड़ना चाहता है अहरह। दहियर की पुकार से ही वैज्ञानिक की मुग्धता टूटी। मुड़कर देखा उन्होंने, नीम की ऊँची

डाली पर बैठ दिल खोलकर गा रहा था वह। सुरों का एक समूह मानो अदृश्य डैने फैलाकर बाँसुरी की तान पर उड़ा जा रहा हो। कौन कहेगा कि कुछ ही देर पहले यह पंछी हमलावर हो उठा था! थोड़ी दूरी पर शकरखोरा चहक रहा था, तोतों का झुण्ड पास में मौलसरी के पेड़ पर आ बैठा था, पतेना चिड़ियों का झुण्ड स्वछन्द भाव से आस-पास उड़ रहा था, इनपर दहियर को आपत्ति नहीं थी, लेकिन कोई दूसरा दहियर यदि आ जाय, तो वह बर्दाश्त नहीं करेगा उसे। भाई-बन्दी से कोई मतलब नहीं। भाई-बन्दी रखता ही कौन है आजकल? - अचानक वैज्ञानिक को ऐसा महसूस हुआ। आत्मीय-स्वजनों के बीच प्रीत नहीं रह जाता, क्योंकि उनके बीच स्वार्थ की तपिश इतनी उग्र हो जाती है कि प्रीत के सुकुमार कोंपल कुम्हला जाते हैं। आपके सुख, आपकी सुविधा में हिस्सा लेने में सदा तत्पर मिलेंगे वे। अपने ऐश्वर्य में यदि उन्हें हिस्सा लेने दें, तब भी वे सुखी नहीं होंगे, ईर्ष्या में जले-भुनेंगे। जटिल मानसिकता है। इसीलिए शायद दुनिया के बड़े-बड़े काव्यों के विषयवस्तु आत्मीय-विरोध ही होते हैं। बड़े-बड़े गणितज्ञ जैसे कठिन सवालों को लेकर सिर खपाना पसन्द करते हैं, वैसे ही बड़े-बड़े कवि जटिल मनोभावों के रहस्य को लेकर खो जाना चाहते हैं- इस थ्योरी को स्थापित करने के बाद भौंहों को सिकोड़ कर कुछ देर सोचा उन्होंने। आश्चर्य! अनात्मीय के साथ ही प्रेम होता है। जिसके साथ कभी कोई परिचय नहीं होता, वही सबसे ज्यादा अन्तरंग हो जाता है। पहले सभ्य समाज में बहन से ही विवाह किया जाता था, जब मनुष्य और भी सभ्य हुआ, तब यह प्रथा उठ गयी। वैज्ञानिक को लगा, दूसरों की कन्या को गृहिणी बनाने की प्रथा का प्रवर्तन सिर्फ प्रजनन-विज्ञान की उपयोगिता के लिए हुआ है- ऐसा मानने के पीछे कोई कारण नहीं है। प्रजनन विज्ञान तो बहुत बाद का मामला है। रक्त-सम्बन्धी आत्मीयों के प्रति प्रेम नहीं उपजता- इस सत्य का ही सम्भवतः मनुष्य ने बहुत पहले आविष्कार किया था। वैज्ञानिक फिर सचेत हुए। ...सोच-विचार उलझता जा रहा था। फिर दहियर की ओर ध्यान देने की कोशिश की उन्होंने। अब उसकी संगिनी भी नीचे की डाली पर आ बैठी थी। दिखावा ऐसा था- मानो, वह कुछ भी नहीं जानती। उसी के चलते इतना बड़ा एक युद्ध हो गया, उसी के लिए ऊपर वाली डाली पर संगीत-चर्चा चल रही है- मानो, वह इन सबके प्रति उदासीन हो। फुदक कर दूसरी डाली पर जा बैठी। रंग भले नर चिड़िये के जैसा ही था, लेकिन उतना चमकदार काला भी नहीं था, थोड़े-से धूसरपन का आभास था। इस धूसर काले

में भी एक सौन्दर्य था। नर के मुकाबले ज्यादा सुसंस्कृत हो जैसे। नर पंछी भी उड़कर दूसरी डाली पर बैठा और फिर गाना शुरू कर दिया उसने।

पदचाप सुनकर वैज्ञानिक ने पलट कर देखा, रत्नप्रभा आ रही थीं। पीछे एक नौकर था। उसके सिर पर एक बहुत बड़ा आईना था।

रत्नप्रभा बोलीं, “कहाँ रखवाना है?”

वैज्ञानिक किसी बच्चे की तरह उत्साहित हो उठे-

“नीम के उस पेड़ के नीचे रखना कैसा रहेगा! झाड़ियों से ढक देना होगा लेकिन। और हमें कहाँ बैठना चाहिए बोलो तो? पास में ही हमारे बैठने की व्यवस्था भी करनी होगी, फोटो खींचना है न!”

“हमारा जो छोटा तम्बू है, उसे यहाँ लगाने से तो हुआ।”

“अरे वाह, यह तो गजब होगा!”

“उस ऊँची जगह पर लगवा दूँ?”

“ग्रैण्ड आइडिया। डालियों वगैरह से इसे भी ढकना होगा लेकिन। कहने का मतलब, तम्बू देखकर चिड़िया कहीं- ”

“मैं समझ गयी। पहले आप नाश्ता कर लीजिए। चाय भी भिंगो रखी है।”

“ओह हाँ, चला जाय।”

मुड़ते ही वैज्ञानिक ने देखा, कवि चले आ रहे थे।

“ओह, आप आ गये! अच्छा हुआ। आज एक एक्सपेरिमेण्ट करने की सोच रहा हूँ।”

“क्या?”

“देख ही लीजियेगा, पहले चाय पी ली जाय, चलिए।”

डालियों और झाड़ियों से ढके छोटे-से तम्बू के अन्दर कवि और वैज्ञानिक दुबक कर बैठे हुए थे। नीम के पेड़ के नीचे बड़े-से आईने को रत्नप्रभा ने झाड़ियों से ऐसे ढाँप दिया था कि वह आस-पास के परिवेश के साथ घुल-मिल गया था।

वैज्ञानिक साँस रोके दहियर के आगमन की प्रतीक्षा में बैठे थे। कवि ने शालिक (घरेलू मैना) के एक जोड़े पर ध्यान केन्द्रित कर रखा था। सामने खपरैल की छप्पर पर बैठ कन्धे उचका-उचका कर जाने क्या-क्या बातें कर रहे थे वे! उनके रूप-रंग-स्वर में खटकने वाला कुछ भी नहीं था, लेकिन रोज उन्हें देखते-देखते ऐसा हो गया था कि अब उनमें कुछ खास नजर नहीं आता। कैसा

एक अतिपरिचित घरेलू भाव था उनमें। मैनों में भी बेशक नर होते ही हैं, लेकिन कोई अलग पहचान नहीं होती उनकी। उत्क्रोश या शिकरा प्रजाति के पंछियों के तो क्या कहने, नर दहियर और नीलकण्ठ में भी पौरूष की छाप होती है। शालिक चिड़ियाँ इनसे अलग हैं- अतिपरिचिता, प्रतिवेशिनी के समान। कुछ देर तक प्रायः अपलक आईने की ओर देखते रहने के बाद वैज्ञानिक लम्बे लेट गये और फुसफुसा कर कवि से बोले, “आप भी ऐसे लम्बे लेट जाईए। कितनी देर तक बैठना होगा- पता नहीं।”

वैज्ञानिक ने आगे कुछ नहीं कहा। गिरगिट की तरह सिर उठाये वे नीम की झुरमुट में ‘चिक्-चिक्’ कर रही एक चिड़िया को दूरबीन से देखने की कोशिश करने लगे।

छोटे-से तम्बू में लेटने की प्रक्रिया दुरूह थी, कवि बैठे-बैठे ही मैनों को देखते रहे एकाग्रचित्त होकर। कन्धों के रोओं को फुलाकर गर्दन हिला-हिला कितनी ही बातें बोल रही थीं वे। एकाएक मन में कविता जाग उठी-

शालिक और मालिक शब्द भले मिलते-जुलते हों
मालिकों-जैसा हाव-भाव नहीं उसमें
छप्पर के ऊपर या गोहाल के बगल में या पेड़ पर
जहाँ भी जितना भी परिचय उसका मिला है
उसमे तो वह बस घरवाली जान पड़ता है।
(कुल 14 पंक्तियों की कविता)

“आ गया।”

वैज्ञानिक फुसफुसाकर बोले। उधर शालिक दोनों भी उड़ गये। जाने कहाँ से उतर आया एक नर दहियर। उतरते ही एक छोटे-से पतंगे को पकड़ कर एक झटके में उसे मारकर वह निगल गया। फिर फुदकते हुए कुछ आगे बढ़ा। एक टूटा लोटा पड़ा हुआ था, उसी पर ठोकर मारने लगा। इसके बाद एकाएक उसे आईने में अपना प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ा। दिखते ही उसकी दुम तनकर खड़ी हो गयी। गले से ‘चिक्-चिक्’ के दो शब्द स्फुलिंग की तरह निकले। इसके बाद कन्धों को फुलाकर नृत्य की भंगि में फुदकते हुए वह आईने की ओर बढ़ने लगा। दुम खड़ी ही थी। ‘क्लिक’ आवाज हुई। वैज्ञानिक ने फोटो लिया। अब दहियर ने भागके जाकर आक्रमण किया, लेकिन आईने से प्रतिक्रिया पाने के बाद वह तत्क्षणात् उड़ गया। उड़कर वह पास के अमरूद की डाली पर जा बैठा।

वहीं से दुम फुलाये वह शब्दों के वाण छोड़ने लगा। इसके बाद अचानक उड़ गया।

वैज्ञानिक की आँखें खुशी से चमक रही थीं।

“देखा आपने?”

“हाँ, बिलकुल देखा।”

“चिड़िया की आँखों पर ध्यान दिया था आपने?”

“कुछ खास था क्या?”

“बेशक था! आँखों की दृष्टि में एक हिंस्त्र भाव चमक रहा था। वही तो देखने लायक था। जब ये प्रणय-निवेदन करते हैं, तब भी ये ऐसे ही फुदकते हुए नाचते हैं और गाना गाते हैं।”

“आपके कहने का मतलब, क्रोध और प्रेम- दोनों अवस्थाओं में इनका हाव-भाव एक जैसा होता है?” कवि ने हँसकर पूछा।

“नहीं, थोड़ा फर्क है। आँखों का भाव बदल जाता है।”

“किस तरह?”

“मुलायम। बहुत कुछ ऐसा- ”

वैज्ञानिक ने अपनी अधखुली आँखों की मुलायम दृष्टि के साथ समझाने की कोशिश की। कवि के हँस पड़ने से वे थोड़ा लज्जित भी हुए।

इसके बाद बताया उन्होंने, “दहियर के नर और मादा देखने में अलग-अलग होते हैं। लेकिन सोचिए कि जिन चिड़ियों में नर-मादा एक ही जैसे होते हैं, तो जब वे हजारों-हजार मील अतिक्रम कर दूसरे देशों में जाते हैं, तब नर-चिड़े मादा-चिड़ियों को कैसे पहचानते हैं? इसी भाव-भंगिमा से। अँग्रेजी में इसे ‘पोश्चरिंग’ (Posturing) कहते हैं। उनके आक्रमण करने और प्रणय-निवेदन करने के रंग-ढंग प्रायः एक-जैसे होते हैं। अपनी प्रजाति के किसी भी पंछी को देखने के बाद नर-चिड़ा ऐसा ‘पोश्चर’ दिखलाता है। अपरिचित पंछी अगर चुप रहे, या सिकुड़ कर बैठ जाय, तो समझ लिया जाता है कि वह मादा है और यदि वह डरकर भाग जाये, या प्रतिआक्रमण करे, तो समझा जाता है कि वह नर है। हालाँकि दहियर के मामले में बिलकुल यही बात लागू नहीं होती, क्योंकि मादा दहियर देखने में अलग होती है। मैं यह देखना चाह रहा था कि मादा दहियर को देखने के बाद ये जिस तरह गाना गाते हैं, जो भाव-भंगिमा अपनाते हैं, नर-प्रतिद्वन्दी को देखने के बाद ठीक वैसा ही करते हैं या नहीं! अभी थोड़ी

देर पहले जो देखा- अरे देखिए-देखिए, देखा? एक घुघु एक महालत का पीछा कर रहा है। दिखायी पड़ा? उस तरफ गये दोनों।"

"देखा। घुघु ऐसे मिलिटरीमैन-जैसा बर्ताव क्यों कर रहा है?"

"महालत ने घुघु के अण्डे जो खा लिये हैं।"

"क्या बात करते हैं! एक चिड़िया दूसरी चिड़िया के अण्डे खाती है?"

"बेशक खाती है। कोई भी चिड़िया शाकाहारी नहीं होती। महालत कौओं की बिरादरी के होते हैं न, इसलिए सामिष के कुछ ज्यादा ही भक्त होते हैं।"

"नाम क्या बताया आपने?"

"महालत, बँगला में हाँड़िचाँचा। टाकाचोर भी कहते हैं कोई-कोई। अँग्रेजी नाम ट्री-पाई (Tree Pie) और वैज्ञानिक नाम हुआ उसका- "

"वैज्ञानिक नाम की जरुरत नहीं। बहुत श्रुतिकटु होगा। हाँड़िचाँचा नाम भी सुनने में कटु ही है। टाकाचोर भी कोई अच्छा नाम नहीं है। पंछी तो देखने में अच्छा-खासा है। हिन्दी नाम बढ़िया है।"

"हिन्दी में एक और नाम है इसका- महोखा।"

"उसदिन महोखा नाम से जो चिड़िया अपने दिखायी थी, उसका बँगला नाम तो 'कूको' बताया था आपने?"

"हाँ, उसे भी महोखा कहते हैं- Centropus Sinensis- "

"कूको नाम भी बढ़िया नहीं है। मैंने उसका नाम 'बादामी-काली' रखा है। हाँड़िचाँचा का भी कोई और बँगला नाम रखना होगा- "

"शान्त रहिए-शान्त रहिए, एक और दहियर आया है। वो रहा- "

दहियर ने पेड़ की एक ऊँची डाली पर बैठकर गाना शुरू कर दिया। वैज्ञानिक चमकती आँखों से देखते रहे उसे। कवि भी मुग्ध हो गये। दोनों काफी देर चुपचाप बैठे रहे। चिड़िया का गाना जारी रहा।

वैज्ञानिक बोले, "गजब है! क्यों?"

कवि ने कविता में उत्तर दिया-

> "सुर के आवेग में सुर के मेघ से सुरलोक में उतरा है सुर का श्रावण
> सुर की झरना, सुर की नदी, सुर का फौव्वारा, सुर का प्लावन।"

अप्रत्याशित रूप से रत्नप्रभा आकर हाजिर हुईं।

थरथराती आवाज में बोलीं, "सब्जीबाग वाले मकान में डाना नाम की जो लड़की रहती हैं, वे आयी हुई हैं।"

"अच्छा?"

वैज्ञानिक हड़बड़ा कर उठ खड़े हुए।

कवि के मुँह से सिर्फ निकला, “ओह!”

उनकी आँखों में अवर्णनीय आभा चमक उठी।

डाना भले काफी सजग होकर बाहर वाले कमरे में बैठी हुई थी, लेकिन मन में उसके कुण्ठा का अन्त नहीं था। कुण्ठा का कारण था- अन्तर में वह भिक्षापात्र लेकर किसी के द्वार पर खड़ी थी। अन्तर के भिखारिणी-भाव को वह किसी भी तरह से छुपा नहीं पा रही थी। आत्मसम्मान कायम रखने की प्रेरणा से ही आयी थी वह, लेकिन उम्मीद कर रही थी कि काश, कोई और रास्ता निकल आये! गम्भीर स्वभाव वाली रत्नप्रभा ने पूरी औपचारिकता के साथ डाना के सामने नाश्ते की थाल और चाय सजाकर अभ्यर्थना की थी, फिर भी उन्हें महसूस हो रहा था कि विपत्ति की मारी इस विदुषी विदेशिनी का जैसा स्वागत होना चाहिए, वैसा वे नहीं कर पा रही हैं। ज्यादा बातचीत करने का स्वभाव उनका था नहीं। अपरिचितों के सामने अपनी थरथराती मोटी आवाज में बातें करने में उन्हें लज्जा भी आती थी। इस कारण उनके काले चेहरे पर एक विचित्र भाव तैर गया था। अक्षमताजनित लज्जा, अभिजात्य भद्रता और स्वाभाविक गाम्भीर्य के मिश्रण से जन्मा यह भाव इतना जटिल था कि उनके साथ स्वल्प परिचय रखने वाले के लिए इसका मर्मोद्भेद करना कठिन था। कभी वे भौंहें सिकोड़ रही थीं, कभी हँसने की कोशिश कर रही थीं, संकोच के साथ दो-चार बातें करके कभी इतनी गम्भीर हो जा रही थीं कि डाना को समझ में नहीं आ रहा था कि वे किस प्रकृति की महिला हैं। रत्नप्रभा को देख डाना को एकबारगी यही लगा था कि ये बँगाली नहीं हैं। लगा था, मद्रासी या सन्थाल आया ने शायद बँगाली पहनावा पहन रखा है। परिचय पाकर विस्मित रह गयी थी वह। ऐसी बलिष्ठ देहयष्टि वाली बँगाली महिला साधारणतया देखने में नहीं आती। ये ही अमरबाबू की पत्नी हैं? रत्नप्रभा को भी तन्वी डाना की सुसभ्य मुखमुद्रा, बुद्धिदीप्त आँखों, सुसंस्कृत स्वल्पभाषण में एक ऐसी लड़की नजर आयी, जैसी आम तौर पर नजर नहीं आती; न ही पहले ऐसी किसी लड़की से वे मिली थीं कभी। डाना बहुत पसन्द आयी उन्हें। दिक्कत यह थी अपनी इस पसन्द को वे ठीक से प्रकट ही नहीं कर पा रह थीं। इस विदुषी कन्या के साथ किस तरह वार्तालाप करना शोभनीय होगा; वैसा वार्तालाप करने की उनमें योग्यता भी तो नहीं, फिर भी जितना हो सके, उतना तो करना चाहिए- कुछ ऐसे ही मानसिक उलझनों में उलझ कर वे अपने व्यवहार को सहज रख ही नहीं पा रही थीं। यह

उलझन उनके हाव-भाव में स्पष्ट नजर आ रहा था। वार्तालाप जम ही नहीं रहा था।

डाना चेहरे पर मुस्कुराहट लिये चुप बैठी थी। वैज्ञानिक और कवि के पदचाप बरामदे पर सुनायी दिये। वैज्ञानिक का कण्ठस्वर भी उभरा। कवि के साथ बात करते हुए ही उन्होंने प्रवेश किया-

“चिड़ियों के गाने पर आप कविताएं लिखना चाहें, तो लिखिए, लेकिन इन पर एक अच्छा वैज्ञानिक निबन्ध भी लिखा जा सकता है। विदेशी लेखकों ने लिखा भी है। टर्नबुल की ‘Bird Music’ नामक किताब देखी है आपने? उसमें देखिएगा, चिड़ियों के सुरों का विश्लेषण किया है उन्होंने। चिड़ियाँ क्यों गाती हैं, उन गानों का मूल उपकरण- मतलब Component Elements क्या-क्या हैं- ”

इसके बाद अचानक डाना की ओर देखकर वे बोले, “ओह, आप आयीं हैं! नमस्कार-नमस्कार! बहुत खुशी हुई, बैठिए-बैठिए। हमदोनों दहियर चिड़ियाँ देख रहे थे- ”

कवि ने सहास्य दृष्टि के साथ डाना की ओर देखा। उनके मन में आया, भले इसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता- किया जा सकता, तो बेहतर होता- कि दहियर का गीत और डाना का रूप असल में एक ही चीज है। पहला कानों के माध्यम से मर्मस्थल को छूता है और दूसरा आँखों के माध्यम से। यह बात अगर अमरबाबू से कही जाय, तो वे हँसी में उड़ा देंगे, लेकिन देखा जाय, तो सही में दोनों में अन्तर नहीं है।

डाना बोली, “एक काम से आयी थी आपके पास।”

“कहिए, क्या बात है?”

“मैंने तय किया है कि कोलकाता चली जाऊँगी।” जाने किस प्रत्याशा से डाना पल भर के लिए रूकी।

वैज्ञानिक बोले, “ऐसा क्या? अच्छी बात है।”

बैंक फेल होने के बाद सब कुछ लुट जाने पर जो दशा होती है, कवि के मन की हालत बहुत कुछ वैसी ही हो गयी। यह खबर सुन रंग उड़े चेहरे के साथ अवाक् रह गये वे।

डाना ने आगे कहा, “कोलकाता में मेरा वैसा कोई परिचित नहीं है। आपके अगर परिचित हों वहाँ और उनके नाम अगर आप दो-एक पत्र दे सकें, तो मेरे लिए यह अच्छा रहता।”

“क्यों नहीं, दे दूँगा। कोलकाता जाकर आप मेरे घर में भी रह सकतीं हैं। घर तो वह खाली ही है न, क्यों?”

“नहीं। उसमें कालीबाबू लोग रह रहे हैं।” रत्नप्रभा ने गम्भीरता के साथ कहा। उनकी आँखों में हँसी भी थी।

“ओह हाँ-हाँ, ध्यान नहीं था। ठीक है, मैं पत्र लिख दूँगा।”

डाना बोली, “और एक बात। मैं प्रायः दो महीनों से आपके मकान में हूँ। उसका किराया कितना होगा?- चुकाकर जाना चाहती हूँ।”

“मकान तो हमने किराये पर नहीं दिया था,” काँपती आवाज में रत्नप्रभा ही फिर बोलीं, “आपको रहने के लिए दिया था।”

डाना निरुत्तर हुई। फिर खुद को सम्भाल कर बोली, “फिर इतना खर्च करके-”

“आपके न रहने पर भी मरम्मत करवाना पड़ता। मकान अगर है, तो देखभाल होती ही है।”

इतना कहकर रत्नप्रभा ने पति की ओर देखा, तो पाया कि वे कमरे के दूसरी तरफ जाकर ध्यानमग्न हो सेल्फ में किताब खोज रहे थे। रत्नप्रभा की बड़ी-बड़ी दोनों आँखें मधुर रसिकता से परिपूर्ण हो उठीं, लेकिन कुछ कहा नहीं उन्होंने। हास्यदीप्त दृष्टि के साथ पति की ओर देखती रहीं वे।

डाना ने कहा, “फिर तो मेरे पास कहने के लिए कुछ नहीं है। आपकी इस सदाशयता का मूल्य चुकाने की कोशिश उद्दण्डता होगी, लेकिन मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मैं आपके लिए क्या करूँ।”

डाना एकाएक चुप हो गयी। उसके होंठ ईषत् काँप उठे मानो, लेकिन यह कम्पन इतना मद्धम था कि किसी को नहीं दिखा।

कवि अब तक चुपचाप बैठे थे। जीवन एक स्वप्न है, जो कुछ भी दिखायी दे रहा है, वह माया है- ऐसी किसी वैदान्तिक चिन्ता से वे स्वयं को सान्त्वना नहीं दे रहे थे, बल्कि इस मर्मान्तक दुःख का उपभोग ही करने की कोशिश कर रहे थे। उनके मन में आ रहा था-

मलय की थपकी नहीं रही
अब हैं आँधियों के थपेड़े
फिर भी भा रहा मन को,
तुम्हारी स्तुति में एकान्त कक्ष में
बैठ अकेले रो रहा मैं

आशा के दीप जलाये।

(कुल 11 पंक्तियों की कविता)

डाना के रूकने पर वे सामान्य हुए। डाना की ओर देखकर वे बोले, “स्कूल में आपकी नौकरी की बात हो रही थी, उसका क्या हुआ?”

“मैंने नहीं करने का फैसला लिया। मास्टरी कभी की नहीं है, मुझसे नहीं हो पायेगा।”

दुःखी मन से कवि बोले, “ओह। जो आप कह रहीं हैं, वह एक लिहाज से ठीक ही है, लेकिन कर लेतीं, तो हो सकता है कि कुछ अलग ही लगता।”

“वह काम मुझे पसन्द भी नहीं है।”

“चलिए, हम अन्दर चलते हैं।” रत्नप्रभा ने डाना से कहा। फिर कवि की ओर देखकर वे बोलीं, “आप लोगों को फिर चाय चाहिए होगी जरूर?”

वैज्ञानिक किताब ढूँढ़ते हुए ही बोले, “चाय नहीं, कॉफी।”

“ठीक है।”

डाना को साथ लेकर रत्नप्रभा अन्दर चली गयीं।

वैज्ञानिक ने सेल्फ से एक पतली-सी किताब निकाल कर उसकी धूल झाड़ी।

“यह रही टर्नबुल की किताब। चिड़ियों के गीत और उनकी भाषा को लेकर काफी कुछ लिखा है उन्होंने। चिड़ियाँ क्यों गाती हैं, इसका कारण खोज निकालने की भी कोशिश की है। उनके अनुसार बसन्त ऋतु ही उनके गीत का एक प्रमुख कारण है। दूसरा कारण शायद उन्होंने प्रणयलीला को बताया है- मतलब, Nupital Display।”

कहकर जल्दी-जल्दी पन्ने पलटने लगे वे।

“यह रहा, तीसरा कारण वे बता रहे हैं Rivalry- यानि, प्रतिद्वन्दिता; Defiance- यानि, युद्धं देहि भाव और Assertion Rights- यानि, अपना अधिकार जताने को। चौथा कारण है, Joy and high spirits- यानि, आनन्द और स्फूर्ति। अभी हमलोगों ने जिस दहियर को देखा, उसमें ये सारी बातें नजर आ गयीं, क्यों? लेकिन ठहरिए- ”

फिर पन्ने पलटने लगे वे।

“यह रहा- ”

“क्या?”

“चिड़ियों की चहक को बारह भागों में बाँटा है उन्होंने। देखा जाय, दहियर में ये सब हमें नजर आये या नहीं। Song Proper- यानि, स्वाभाविक गान, सुना

हमने; Little Song- छोटी-मोटी चहचहाहट, सुना है; Phrases- यानि, यूँ ही किस्म की चहक, सुना है; Chirrups- अपनों के बीच बात-चीत, नहीं सुना; Call Notes- आह्वान, नहीं सुना; Flight Notes- मतलब, उड़ान भरने की पुकार, नहीं सुना; Alarm Notes- भय की पुकार, नहीं सुना; Love Notes- प्रणय-निवेदन, सुना हमने; Imprecations- अभिशाप, सुना है; Cradle Notes- बच्चों के साथ उनकी बात-चीत, नहीं सुना; Grief Notes- तकलीफ के समय की पुकार, शायद नहीं सुना। Drumming of Woodpecker- यह अलग चीज है- ”

कवि भले कुछ बुझे-बुझे-से थे, फिर भी एक प्रश्न कर लिया उन्होंने, “इतनी तरह की चहचहाहट होती है? थोड़ा विस्तार से समझाकर बताईये न। पहला क्या था?”

वैज्ञानिक उत्साहित हो उठे। बोलना शुरू किया उन्होंने-

“पहला है Song Proper- मतलब, बाकायदे सार्वजनिक गान। किसी ऊँची डाल पर बैठ दहियर जब गाता है, तब वह चाहता है कि सभी उसका गीत सुने। Little Song इसी का छोटा संस्करण है। Chirrups हुआ, आपस में बातचीत, गौरैया या कचबचिया जैसा करती हैं। दहियर चिड़ियों में यह बात नहीं देखी है मैंने। दहियर गम्भीर प्रकृति की चिड़िया है- फालतू कच-बच करते नहीं सुना इनको। Phrases- मतलब, एक-जैसी एक लगातार पुकार, जैसे कौआ काँव-काँव करता है या घुघु एक लगातार पुकारता है, दहियर की सीटी को इस श्रेणी में रखा जा सकता है। Call Notes वह है, जिससे एक पंछी दूसरे को पुकारता है या पंछियों का एक दल दूसरे को पुकारता है- इस पुकार को Call Notes कहते हैं। बगुलों या हंसों का एक दल जब उड़ा जा रहा हो, तब देखिएगा कि उनमें से एक या दो पुकारते रहते हैं। दहियर की सीटी को Call Notes भी कहा जा सकता है। सीटी से कई बार अपनी संगिनी को बुलाते हैं ये। मैंने और कोई Call Notes सुना है- ऐसा याद नहीं आ रहा। बहुत-सी चिड़ियाँ उड़ान भरने से पहले एक आवाज करती हैं, इसे Flight Notes कहते हैं। मैना ‘पिंग्-’ जैसी एक आवाज करके उड़ान भरती है, कोयल जल्दीबाजी में ‘कू-कू-कू-कू’ की आवाज करके तब उड़ती है। दहियर चिड़िया बिना कोई आवाज किये उड़ान भरती है, उसकी Flight Notes नहीं सुनी मैंने, उसकी Alarm Notes भी नहीं सुनी। डरने पर या उत्तेजित होने पर Alarm Notes सुनने मिलता है। साँप या बिल्ली को देखने के बाद मैना जो आवाज निकालती है, वही Alarm Notes है। Love Notes मतलब प्रेम की पुकार; दहियर की Love Notes बहुत मधुर होती है।

किसी दिन सुनाऊँगा आपको। Imprecation हुआ गाली-गलौज, फिंगों के मुँह से अक्सर सुनने मिल जायेगा आपको। दहियर एक मुलायम 'केर्र्र्र'-जैसा शब्द करते हैं। Cradle Notes गौरैयों-मैनों में सुना जाता है, जब वे बच्चों को खिलाती हैं। दहियर का नहीं सुना है, इसबार सुनना है, ठीक है। हमारी गौशाला या अस्तबल के छज्जे पर वे शायद घोंसला बनायेंगे, तब सुना जायेगा। Grief Notes दहियरों का कभी सुना नहीं है मैंने, लेकिन जाड़े में जिस करूण आवाज में पुकारते हैं वे, उसे Grief Notes कहा जा सकता है। आम तौर पर किसी तकलीफ में ही- "

दरवाजे पर मुन्शी नजर आया।

"हुजूर, चिड़ियाँ आज सुबह से ही बहुत शोरगुल कर रही हैं।"

"अच्छा! खाना दिये थे या नहीं?"

"हाँ हुजूर। खाने में आजकल कोई दिक्कत नहीं है। मल्लिकबाबू आजकल रोज बहुत सारे कीट-पतंगे भेजवा देते हैं।"

कवि ने पूछा, "कौन-सी चिड़ियाँ?"

"वही रेडस्टार्ट, जिन्हें आपने 'फुलकी' नाम दे रखा है। यह उनके लौटने का समय है न, इसलिए तड़फड़ा रही हैं शायद। चलिए, देख आया जाय।" वैज्ञानिक बोले।

जल्दी से निकलने जा रहे थे वे कि कॉफी का सरंजाम लेकर एक नौकर हाजिर हो गया।

"कॉफी पीकर ही निकला जाय तब, क्या कहते हैं? मुन्शी, तुम बढ़ो, हमलोग आ रहे हैं।"

कॉफी पीते हुए तिरछी नजरों से कवि की ओर देखकर वैज्ञानिक ने शरारती बच्चे की तरह थोड़ा हँसकर कहा, "आज फिर एक ऐसा काम करना होगा, जो आपको बेशक पसन्द नहीं आयेगा।"

"सो क्या?"

"और भी कुछ रेडस्टार्ट को डिसेक्ट करना होगा। देखना होगा कि उनकी ओवरी (Ovary) और टेस्टिस (Testes) किस अवस्था में हैं अभी।"

कॉफी की एक चुस्की लेकर कवि कुछ कहने जा रहे थे, लेकिन उन्हें रूकना पड़ा, क्योंकि रत्नप्रभा आ गयी थीं। रत्नप्रभा ने आकर एक ऐसी बात कही, जो अप्रत्याशित थी और जिसे सुनते मात्र ही कवि का बुझा हुआ मन एक झटके में खिल उठा।

रत्नप्रभा ने कहा, “अच्छा, आपने तो एक प्राइवेट सेक्रेटरी के लिए विज्ञापन दे रखा है, आपके डिक्टेशन नोट करने के लिए, आपके लेख टाईप करने के लिए। उन्हें ही यह काम दे दीजिये न। वे बी.ए. पास हैं, शॉर्टहैण्ड और टाईप-राइटिंग जानती हैं। वे मास्टरी नहीं करना चाहतीं। ऐसे काम की खोज में ही वे कोलकाता जा रही हैं।”

“बहुत अच्छी बात है! वे यदि रूक जाना चाहती हैं, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।”

“वे राजी हैं। लेकिन वे अलग रहना चाहती हैं, एक ही घर में रहने में उन्हें संकोच हो रहा है।”

रत्नप्रभा के गम्भीर चेहरे पर एक हँसी खेल गयी।

“जहाँ रह रही हैं, वहीं रह सकती हैं। बस मेरे काम के लिए समय निकालना है।”

अकारण ऊँची आवाज में कवि बोल पड़े, “यह तो बहुत बढ़िया रहेगा!”

“चलिए, रेडस्टार्ट चिड़ियों को देख आया जाय- शोरगुल क्यों कर रही हैं वे!”

दोनों निकल पड़े। कवि ने उत्साह के साथ कहा, “देखिए, यह सही है कि शुरू-शुरू में आपका यह डिसेक्शन का मामला मुझे बुरा लगता था, लेकिन अब सोचकर देख रहा हूँ कि इसमें बुरा लगने वाली कोई बात नहीं है। जो कर्तव्य है, वह तो करना ही होगा।”

“बुरा लगना, अच्छा लगना अभ्यास पर निर्भर करता है। शुरू-शुरू में मुझे भी बुरा लगता था, अब अच्छा लगता है।”

“सही बात है।”

अध्याय- 4

मन्दाकिनी उस दिन काफी सुबह ही जाग गयी थीं। उठते ही पहले वे उपलों को देखने गयीं। बीती रात एक झोंक वर्षा हो गयी थी, उपले कहीं गीले होकर गोबर न बन गये हों! जाकर देखा, उपले तो सारे गीले हो ही गये थे, सिरोई मैनों का एक झुण्ड उन्हें बर्बाद भी कर रहा था। चीख-पुकार के साथ चोंच मारते हुए ताण्डव मचा रखा था करमजलियों ने। अफसोस के मारे वे रूआँसी हो गयीं। एक तो आजकल कोयला और जलावन की लकड़ियाँ नहीं मिलतीं, घर में नौकर-चाकर नहीं था, कामवाली सुबह-शाम आकर किसी तरह बर्तन माँजते ही निकल जाती थी, अपने हाथों से कल उपले पाथे थे उन्होंने। सारे गीले हो गये। मैनों

का झुण्ड नीम के पेड़ पर बैठकर कलरव करने लगा। उनकी ओर क्रुद्ध दृष्टि से देखते हुए वे सुन्दरी के गौशाला की ओर गयीं। वहाँ जो देखा, वह भी सुखप्रद नहीं था। गौशाले की छप्पर ठीक से बनी हुई नहीं थी। सुन्दरी रात भींगती रही थी वर्षा में। बछड़े का सारा शरीर गोबर से लथपथ हो रहा था। सुन्दरी के पिछले दोनों पैर भी गोबर में सने हुए थे। उन्हें ही सब सफाई करनी होगी। अचानक उनके हृदय में एक शक्ति का संचार हुआ, उत्साह की एक धारा बह निकली, अनजाने में ही जीवन का अर्थ समझ कर पुलकित हो उठीं वे। भूखे को भोजन मिलने से जैसे वह पुलकित होता है, वैसी ही काम पाकर आनन्दित होती थीं मन्दाकिनी। तेजी से चलकर उन्होंने पहले बछड़े को हटाकर बाँधा और सुन्दरी को बाहर निकाल दिया। आम के पेड़ पर नजर गयी उनकी। बहुत मंजर आये थे, सब वर्षा में झड़ गये। कुछ देर जमीन पर बिछे, धुले मंजरों को देखती रहीं वे। अचानक उनके मन में आया, धरती पर पाप बहुत बढ़ गया है, इसलिए ये प्रकोप आ रहे हैं। गाय में दूध नहीं, खजूर में गन्ध नहीं, असमय वर्षा। सुन्दरी को बाँधकर वे घर के अन्दर गयीं। रसोईघर में एक चूल्हे को साफ कर उसे लीपना होगा और फिर लकड़ी जलाकर चाय बनानी होगी। अपने लिए नहीं, उनके लिए। इसके बाद रसोईघर धोकर दाल की देगची चढ़ाकर स्नान के लिए जायेंगी वे। तब तक झी (कामवाली) आ जायेगी, बाजार से सब्जी लायेगी, तब बर्तन माँजेगी, घर में पोंछा लगायेगी। इतनी देर में मन्दाकिनी का स्नान और पूजा सम्पन्न हो जायेगी। इसके बाद पत्थर के एक गिलास में पूरा गिलास भरकर चाय पियेंगी वे। चाय पीकर खाना पकाने में वे जुट जायेंगी। झी चली जायेगी। आनन्दबाबू तो चाय पीने के बाद ही रोज निकल जाते थे दूरबीन हाथ में लेकर चिड़ियाँ देखने। बारह बजे से पहले कभी नहीं लौटते थे। इसी दौरान मन्दाकिनी छोटे-मोटे सारे काम निपटाती थीं। सुन्दरी की सेवा-शुश्रूषा करती थीं, खाना खाती थीं, शाम के लिए पराँठे और सब्जी बनाकर रखनी होती थी, सामान रहने पर बीच-बीच में दो-एक शौकिया पकवान भी बनाती थीं। कल ग्वाले से दूध खरीद कर रात खीर बनायी थी उन्होंने। आज मालपुए बनाने की इच्छा थी। उत्साह के साथ वे चूल्हा साफ करने लगीं। साफ करके कोयले-लकड़ी के कमरे में गयीं वे लकड़ी लाने। इस कमरे की छप्पर में भी सैकड़ों छिद्र हो गये थे, वर्षा के पानी से लकड़ियाँ गीली हो गयी थीं। उन्हीं में से चुन-चुनकर वे कुछ लकड़ियाँ ले आयीं, पुराने अखबार और किरासन की मदद से जलाया उन्हें। थोड़ा-सा जलकर आग बुझ गयी। किरासन थोड़ा ज्यादा होता, तो जल जाता,

लेकिन आज के जमाने में चूल्हा जलाने में ज्यादा किरासन खर्च नहीं किया जा सकता। पैसे फेंककर भी बाजार में यह मिलने वाला नहीं था। रात में उनकी पढ़ाई के लिए लैम्प में किरासन की जरुरत पड़ती थी। लेटे-लेटे कुछ पढ़े बिना उन्हें नीन्द ही नहीं आती थी। दुनियाभर की बुरी आदतें! कमरे में रोशनी होने से मन्दाकिनी को नीन्द नहीं आती थी। उनकी इसी आदत के चलते आजकल उनके पास सोना छोड़ ही दिया था उन्होंने। बगल के कमरे में सोती थीं। वे अकेले कमरे में लेटे-लेटे पढ़ते रहते थे। कभी उठकर लिखना भी शुरू कर देते थे। विचित्र आदमी थे! ना, किरासन और खर्च नहीं किया जा सकता। झुककर फूँक मारने लगीं वे चूल्हे में और बड़बड़ाते हुए बुरा-भला भी बकने लगीं। आनन्दबाबू को नहीं, अपने भाग्य को भी नहीं, बल्कि विधाता को। मन्दाकिनी का मानना था कि ऊपरवाला ही बीच-बीच में बदमाशी करके सब गुड़-गोबड़ कर देता है। खोकन के प्रति उनका जैसा मनोभाव था, विधाता के प्रति भी वैसा ही था। उनके मन में यह विश्वास भी दृढ़ था कि सैकड़ों बदमाशियों के बाद भी खोकन को जिस तरह उनके सामने हार माननी पड़ती है, उसी तरह विधाता को भी माननी होगी। बचपन के पुण्यी-पुकुर से लेकर आज तक जिस रास्ते पर वे निष्ठापूर्वक चलती आयी हैं, इसी पथ से वे लक्ष्य तक पहुँच जायेंगी। विधाता की ताकत नहीं है कि उन्हें रोक ले! बीच-बीच में शरारत करते हुए वे विघ्न सृष्टि करते हैं- यह जाँचने के लिए कि उनके मन में शक्ति है कि नहीं। इन सबसे मन्दाकिनी हार मानने वाली नहीं थीं। लेकिन शरारत की भी एक सीमा होनी चाहिए। असमय वर्षा करवा के जलावन की सूखी लकड़ियों को गीला करके देश भर के लोगों की आँखों में धुएँ से जलन पैदा करने का क्या मतलब? सिर झुकाये मन्दाकिनी लगातार फूँक मारने लगीं।

(आमतौर पर बँगला में छोटे बच्चों को 'खोकन' कहते हैं और अक्सर यह किसी का 'पुकार नाम' ही बन जाता है। मन्दाकिनी यहाँ अपने बेटे के बारे में सोच रही हैं, जो अभी मामाघर में रहता है। जहाँ तक 'पुण्यी-पुकुर' की बात है, यह बँगला संस्कृति का एक ऐसा अनुष्ठान है, जहाँ से बालिकाएं व्रत-त्यौहार रखना शुरू करती हैं। पौष के महीने के चारों रविवार व्रत रखे जाते हैं और संक्रान्ति के दिन तालाब के किनारे आल्पना- रंगोली- आदि उकेर कर उद्यापन किया जाता है। तालाब को ही बँगला में 'पुकुर' कहते हैं।)

कवि सुबह उठकर मुँह-हाथ धोकर ही छत पर चले गये थे। मन प्रफुल्लित था। अकारण ही उनका अन्तःकरण पुलकित हो रहा था। अपने मोटे-मोटे होंठों

को सिकोड़ कर सीटी बजाने की थोड़ी कोशिश की उन्होंने। रात की वर्षा में सारी मलिनता मानो धुल गयी हो। पेड़-पौधों की शोभा और भी निखर गयी थी। एक दहियर युक्लिप्टस की डाली पर बैठकर अविराम गाये जा रहा था। एक कोतवाल टेलीग्राफ के तार पर बैठा हुआ था। एक नीलकण्ठ उड़ते हुए आकर बैठा। काली-काली शकरखोरा चिड़ियाँ लगातार चहचहा रही थीं। अचानक दृष्टि गयी, उत्तर की ओर आकाश में टंगे काले मेघ के एक टुकड़े पर धूप की छटा पड़ रही थी- लग रहा था, किसी ने एक अलौकिक पर्दा लटका रखा हो। 'कुमारसम्भव' का श्लोक याद आ गया-

यत्रांशुकाक्षेपविलज्जितानां यदृच्छया किंपुरुषाङ्गनानाम्।
दरीगृहद्वार विलम्बिम्बिम्बास्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति।।

कल्पना में हिमालय के गुहाभ्यन्तर में नग्ना किन्नरीकूल के लज्जा-निवारण के लिए गुहा के मुहाने पर यवनिका के समान टंगे मेघ का दृश्य तैर गया। अद्भुत कल्पना थी कालीदास की। विस्मय के साथ स्तम्भित हो देखते रह गये उस तरफ वे कुछ देर तक। सुरों की लहरयिाँ उनकी चेतना को स्पन्दित कर गयीं। उज्जयिनी से लौटना पड़ा उन्हें, हिमालय से उतरना पड़ा। गर्दन घुमाकर देखा, सहजन के पेड़ पर चिड़ियों का एक दल कलरव कर रहा था। जल्दी से वे अपने तिमंजिले वाले कमरे में आये। दूरबीन लेकर कमरे की खिड़की से देखने लगे वे। खिड़की से यह पेड़ और भी स्पष्ट नजर आ रहा था। देखकर विस्मित रह गये वे। सिरोई मैनों का एक झुण्ड। इनका रूप भी इतना सुन्दर होता है! इतने सुर होते हैं इनकी आवाज में! सिरोई मैनों का जो झुण्ड कुछ देर पहले मन्दाकिनी के क्रोध का कारण बना था, उसी ने कवि के मन में कविता जगा दी-

नयी दृष्टि से तुम्हारे रूप को
देखा मैंने आज ओ मीता
ओ गोशालिक, देखा मैंने
तुम तुच्छ तो नहीं रूपान्विता!
(कुल 18 पंक्तियों की कविता)

चाय की प्याली के साथ मन्दाकिनी ने प्रवेश किया। करते ही बोलीं, "आपका दिमाग तो नहीं फिर गया! बामण रसोईया रखना चाहते हैं, पैसे कहाँ हैं इतने?"

"बामण रसोईया?"

कवि स्वप्नलोक से लौट आये और आते ही पारिपार्श्विक वातावरण के प्रति सचेत हुए।

“एक मैथिल बामण आया है। कह रहा है कि आपने रूपचँदबाबू से कह रखा था उसे यहाँ भेजने के लिए। यही खर्चे अभी सम्भल नहीं रहे हैं, अब बामण किसलिए?”

कवि थोड़ा सकपकाये।

बोले, “हाँ, कह तो रखा था रूपचँद से। बामण आ गया? रख लो न। काम करते-करते तो तुम्हारी दुर्गति हो गयी है!”

मन्दाकिनी के मन में थोड़ी प्रीत जागी, लेकिन प्रकट में बोलीं, “काम करने से आदमी मरता है क्या कभी? काम-धाम नहीं रहेगा, तो सारा दिन मैं करूँगी ही क्या?”

“काम-धाम के बारे में क्या सोचना? चलो, दोनों मिलकर चिड़ियाँ देखते हैं। कितनी अद्भुत यह- ”

“हाँ-हाँ रहने दीजिए,” मन्दाकिनी हँस पड़ीं, “चाय पी लीजिए, प्याली लेती जाऊँगी।”

कवि प्लेट में चाय डालकर सुड़कने लगे। थोड़ी-सी चाय छलक कर कपड़े पर गिर गयी।

मन्दाकिनी बिफर कर बोली, “फिर कपड़े पर चाय गिरायी! सारे कपड़ों पर दाग पड़ गये हैं! चाय का दाग कोई आसानी से छूटता है क्या?”

कवि हँसकर बोले, “दाग छुड़ाने की जरुरत क्या है, रहने दिया करो।”

“ये सब गन्दगी मुझे पसन्द नहीं।”

कुछ देर दोनों चुप बैठे रहे। नीम के पेड़ पर सिरोई मैनों के कलरव फिर तेज हो गये थे। कवि की आँखें फिर चमक उठीं। बची हुई चाय प्लेट में डालकर एक घूँट में सारी पी गये वे।

“बामण को रख लो, समझी? एकबार यदि चिड़ियों को देखना शुरू कर दो, तब समझोगी कि कितनी अद्भुत हैं ये। यह मैना ही अब तक अपरिचित थी मेरे लिए।”

कवि ने अचानक एक आशा भरी निगाह के साथ पत्नी की ओर देखा। मन में एक क्षीण आशा जगी थी कि जिस तरह सिरोई मैनों में उन्होंने अप्रत्याशित ढंग से एक नये रूप का आविष्कार किया था, वैसे ही अपनी प्रौढ़ा गृहिणी में भी वे आज शायद आविष्कार कर सकें एक संगिनी को, जो सिर्फ उनकी सन्तान की